

नियमसार, गाथा १४३ । आवश्यक का अधिकार है ।

वदृदि जो सो समणो अण्णवसो होदि असुहभावेण ।

तम्हा तस्स दु कम्मं आवस्सय-लक्खणं ण हवे ॥१४३॥

वर्ते अशुभ परिणाम में वह श्रमण है वश अन्य के ।

अतएव आवश्यक-स्वरूप न कर्म होता है उसे ॥१४३॥

टीका : यहाँ, भेदोपचार-रत्नत्रयपरिणतिवाले जीव को... व्यवहाररत्नत्रयवाले जीव को देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा, नवतत्त्व की भेदवाली श्रद्धा, ऐसी उसकी श्रद्धा बराबर होती है । व्यवहार । उस व्यवहार भेदोपचार रत्नत्रयपरिणतिवाले को जब अशुभभाव आता है, इससे अत्यन्त परवश-अवश है । उसे आवश्यक नहीं है । बाहर के काम में जुड़ता है, तब उसे अशुभभाव हो जाता है । इसलिए यहाँ कहते हैं **भेदोपचार...** व्यवहार कहो, भेद कहो या उपचार कहो । **भेदोपचार-रत्नत्रयपरिणतिवाले जीव को अवशपना** अर्थात् कि स्ववशपना । अवशपना अर्थात् स्ववशपना नहीं... है । आहाहा ! ऐसा... (यहाँ) कहा है ।

भेद तो पाँचवीं गाथा में आता है न, भेद ? अन्तःतत्त्व, बाह्यतत्त्व और परमात्मतत्त्व की श्रद्धा होवे तो वह व्यवहार है । अकेला परमात्मस्वभाव त्रिकाल स्व के आश्रय से होती दृष्टि-अनुभव, वह निश्चयसम्यक्त्व है । उसके बिना परमात्मतत्त्व, अन्तःतत्त्व, बहिरतत्त्व की श्रद्धा भी व्यवहार है । आहाहा ! तब कहते हैं, ग्यारह अंग पढ़ा हो, उसमें यह बात तो आयी हो । नवपूर्व पढ़ा हो, यह बात आयी थी, उसे श्रद्धा में तो होवे व्यवहार । परन्तु यह सब व्यवहार है । यहाँ तो और अधिक लेते हैं ।

जो श्रमणाभास—साधु नहीं, परन्तु साधु का लिबास है । आहाहा ! **द्रव्यलिंगी...** अन्तर समयदर्शन-ज्ञान नहीं और नग्नपना धारण किया है । आहाहा ! और **अप्रशस्त** रागादिरूप अशुभभावसहित वर्तता है,... साथ में यह । अशुभराग । अप्रशस्त अर्थात्

अशुभ। राग-द्वेष, रति, अरति बाह्य पदार्थ में (होती है)। अन्तरपदार्थ की तो दृष्टि नहीं, इससे बाह्य पदार्थ में उसे अशुभभाव हो जाता है। उस अशुभभावसहित वर्तता है। आहाहा! दिगम्बर नग्न मुनि। वह निज स्वरूप से अन्य (-भिन्न) ऐसे परद्रव्यों के वश है;... वह निजस्वरूप चिदानन्द प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु आत्मा, वह निज स्वरूप। उससे वह भिन्न ऐसे परद्रव्यों के वश है। अशुभराग के वश है। आहाहा! आर्तध्यान हो। अशुभराग, इसका ऐसा करना... इसका ऐसा करना। मन्दिर को ऐसा बनाना, अमुक ऐसा बनाना। यह आगे आयेगा। धन-धान्य, मन्दिर, क्षेत्र, मकान, धनधान्य आदि—यह सब बाहर में किसी भी परद्रव्य का आश्रय लेकर जो अशुभभाव में वर्तता है... आहाहा! वह परद्रव्य के वश है। वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! लोगों को यह कठिन पड़ता है, इसलिए सोनगढ़वालों को ऐसा कहते हैं न कि एकान्त है.. एकान्त है.. एकान्त है।

ऐसा कहे, नग्न मुनि हैं, अट्टाईस मूलगुण पालते हैं। वहाँ अट्टाईस मूलगुण भी कहाँ है? उनके लिये चौका करके आहार लेते हैं। चौका बिना (अनुद्दिष्ट) आहार अभी मिलता नहीं। चौका समझते हो? उनके लिये बनावे। उस बिना तो बनता नहीं। अष्टपाहुड़ में तो ऐसा कहा है कि जिसके गुण में मूलगुण का ठिकाना नहीं, उसका एक भी ठिकाना नहीं। ऐसी वस्तुस्थिति कोई हो गयी है। उसके आत्मा के लिये कुछ है नहीं। उसकी जवाबदारी तो उसे है, परन्तु ऐसी वस्तुस्थिति है। जैसा स्वरूप है, वैसा वर्णन होता है, इससे कोई उनकी निन्दा (करना है) या ऐसी बात नहीं है। अरे! वे भी भगवान हैं। ऐसी स्थिति बदलकर भगवान होगा। आहाहा! परन्तु जब तक उसे भगवान आत्मा की चैतन्य सच्चिदानन्द प्रभु, पुण्य और पाप के विकल्प के रागरहित की दृष्टि, अनुभव और आश्रय नहीं है, तब तक उसे... यहाँ तो अशुभभाववाला लिया है। पश्चात् शुभभाववाला लेंगे। आहाहा!

अप्रशस्त... अर्थात् खोटा रागादिरूप अशुभभावसहित वर्तता है, वह निज स्वरूप से अन्य (-भिन्न) ऐसे परद्रव्यों के वश है;... आहाहा! इसलिए उस जघन्य रत्नत्रय-परिणतिवाले जीव को... जघन्य रत्नत्रय कहा, इसलिए कुछ होगा अवश्य? जघन्य अर्थात् हलका-खोटा। खोटा रत्नत्रयपरिणतिवाले जीव को। जघन्य अर्थात् कुछ न कुछ उसका अंश है, ऐसा नहीं। हलका, खोटा। आहाहा! ऐसे जघन्य रत्नत्रय-परिणतिवाले जीव को स्वात्माश्रित... भगवान आत्मा चिदानन्द प्रभु, स्वात्माश्रित निश्चय-

धर्मध्यानस्वरूप... जिस स्वभाव के आश्रय से सच्चा निश्चयधर्म प्रगट होता है, वह उसे नहीं है। आहाहा! 'लाख बात की बात...' आहाहा! दूसरा छोड़ दो, कहते हैं। निज आत्मा एक आनन्दकन्द प्रभु महा आनन्द से विराजमान (है), उसका आश्रय लो तो कल्याण है और धर्म है।

यहाँ तो कहते हैं कि वह **निश्चय-धर्मध्यानस्वरूप...** स्व-आत्माश्रित, वह निश्चयधर्म है, उससे यह रहित है। आहाहा! स्व यह जघन्य रत्नत्रय अर्थात् हलके रत्नत्रयवाले को, स्वात्माश्रित, स्व-आत्मा के अवलम्बन से, **निश्चय-धर्मध्यानस्वरूप परम-आवश्यक-** खास आवश्यक जो कार्य, वह **कर्म** (उसे) नहीं है। उसे निश्चय आवश्यक नहीं है। आहाहा! यहाँ तो अभी देव-शास्त्र-गुरु किसे कहना, उसका ठिकाना (नहीं), उसे भेद-उपचार भी नहीं है। देव-अरिहन्त, वे आहार करें, उन्हें रोग हो, उनके दो माता-पिता हो, उसे तो व्यवहार का भी ठिकाना नहीं है। आहाहा! यह तो व्यवहार में बराबर है। देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा है, नवतत्त्व की-भेद की श्रद्धा है; ऐसा होने पर भी, स्व आत्मा का आश्रय नहीं है, पर के आश्रय से वह वर्तता है। उसमें भी अशुभभाव वर्तता है। आहाहा!

(वह श्रमणाभास)... साधु नहीं, परन्तु साधु कैसा है ? **भोजन हेतु द्रव्यलिंग...** धारण किया है। आहाहा! गजब करता है। यह रोटियाँ खाने के लिये द्रव्यलिंग धारण किया है। आहाहा! इसलिए उसे अशुभभाव कहा है। साधु होंगे तो निश्चिंतता से आहार मिलेगा, अच्छा मिलेगा, बढ़िया मिलेगा। आहाहा! एक व्यक्ति यहाँ कहता था। क्षुल्लक, क्षुल्लक नहीं, परन्तु आठ प्रतिमावाला था। वह आया था। कहे, अभी आठ प्रतिमा है, तब तक लोग आदर नहीं करते; इसलिए आदर कराने के लिये ग्यारह प्रतिमाएँ लेनी पड़ेगी। आहाहा! ऐसा कहता था। (संवत्) १०९६ के वर्ष की बात है। राजकोट। आहाहा! तीस वर्ष हुए। ऐसा कहे, आठ प्रतिमा है, परन्तु जब तक लोगों को ऐसे त्यागी नहीं दिखते, तब तक निमन्त्रण और आमन्त्रण नहीं देते। ग्यारह प्रतिमायें धारण करूँगा तो आदर होगा। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, (वह श्रमणाभास) **भोजन हेतु द्रव्यलिंग ग्रहण करके** नग्नपना ग्रहण करके, **स्वात्मकार्य से विमुख रहता हुआ...** अपना जो कार्य है श्रद्धा-ज्ञान

अन्दर, उससे विमुख रहता हुआ। स्व आत्मा का कार्य तो यह है। अपना आत्मा ज्ञान और आनन्द से भरपूर प्रभु पूर्ण, उसके आश्रयरहित, उसके कार्यरहित.... आहाहा! **स्वात्मकार्य से विमुख...** यह व्यवहार की क्रिया आदि जो करनेवाला शुभभाव यहाँ तो कहते हैं। वह **स्वात्मकार्य से विमुख रहता हुआ परम तपश्चरणादि के प्रति भी उदासीन** परम तपस्या अर्थात् आत्मा का ध्यान। आत्मा के आनन्द में उग्ररूप से आनन्द का होना। आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द का उग्ररूप से होना, इसका नाम परम तपश्चर्या। आहाहा!

उस **परम तपश्चरणादि के प्रति...** आदि अर्थात् निश्चय द्रव्य के आश्रय से होती क्रिया, उसके आश्रय के प्रति उदासीन (**लापरवाह**) रहकर... बाहर का बराबर सँभालना। लोगों को पसन्द आवे, लोग आदर करे, वह बाहर का सँभालना, अन्दर के स्वात्मकार्य से विमुख, आहाहा! यहाँ तो स्पष्ट ना करते हैं। ऐसे (**लापरवाह**) रहकर **जिनेन्द्र मन्दिर...** उसका ध्यान रखे। मन्दिर बना या नहीं? बनाया या नहीं? देखते हैं हम। आहाहा! वे सब अशुभभाववाले हैं, कहते हैं। शुभभाववाले भी नहीं। आहाहा!

जिनेन्द्र मन्दिर अथवा उसका क्षेत्र,... इस मन्दिर के लिये कितना चौड़ा क्षेत्र लिया है? कितना रहेगा? अमुक ध्यान रखे साधु होकर। आहाहा! स्वात्मा का कार्य छोड़कर परक्षेत्र और परद्रव्य का के कार्य में जुड़ता हुआ। आहाहा! **क्षेत्र, मकान,...** पर के मकान में, इस मकान में इतना ठीक पड़ेगा, इसको इतना रहने का ठीक पड़ेगा और इसमें ऐसा, इतने कमरे बनाओ और इसमें यह बनाओ। आहाहा!

धन... धन की-पैसे की दरकार। आहाहा! इस ट्रस्ट में पैसे होते हैं न, देखो न! ट्रस्ट में पैसे... करोड़ रुपये इकट्ठे करना है न? आर्यनन्दी है और इकट्ठे करते हैं। एक करोड़। उसमें इतने अभी हुए नहीं। यहाँ भी मन्दिर है। समन्तभद्राचार्य ने उन्हें दीक्षा दी है। आहाहा! वे पैसे उगाहते हैं यह तीर्थक्षेत्र के उद्धार के लिये एक करोड़ एकत्रित करने का निश्चय किया है। उसमें कितने ही लाख हो गये हैं। आहाहा! यह कहते हैं कि द्रव्यलिंगी भी अशुभभाववाला है। आहाहा! अब यह शास्त्र ऐसा पुकारता है। यह पैसे का ध्यान रखे, यह रखे, वैसा करे। आहाहा! एक पूर्णचन्द्रजी क्षुल्लक थे न, गुजर गये। यहाँ रहते थे, यहाँ प्रेम था। परन्तु... करते सब। पैसे रखते। आठवीं प्रतिमा के बाद पैसे नहीं होते। ग्यारह प्रतिमाओं में आठ प्रतिमा के बाद पैसे नहीं रखे जाते। वे पैसे रखें, सँभाल करें,

बहियों का ध्यान रखें, दूसरे का ऐसा करें। तब वे बचाव करते। वह नियमसार में आता है न? गाथा नहीं? कि ऐसा जरा-सा होवे तो भी उसे....

मुमुक्षु : परमार्थवचनिका का आधार लेकर कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परमार्थवचनिका। सबका उदय एक सरीखा नहीं होता। ऐसा आधार लेते थे। हमारा उदय यह है। पैसा-बैसा रखना, इकट्ठा करना। भले क्षुल्लक हैं परन्तु हमारा उदय ऐसा है। सबका उदय एक सरीखा नहीं होता। अरे! परन्तु यह किसकी अपेक्षा से बात है? अरे रे! बात करते हुए भी शर्म आये ऐसा है। किसी की बात किसलिए आलोचना। परन्तु यह तो कथन ऐसा आया है। आचार्य महाराज ने कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने स्वयं के लिये बनाया है और उसकी टीका करनेवाले पद्मप्रभमलधारिदेव हैं। आहाहा! मैं तो आनन्द में रहता हूँ, ऐसा कहते हैं। मैं तो परम अतीन्द्रिय आनन्द में रहता हूँ। वे यह बात करते हैं। बात करते हुए कहीं कोई राग-द्वेष नहीं है। वह तो वस्तु बतलाते हैं। आहाहा!

ऐसे धन, (मकान) धान्यादिक... अनाज का ध्यान रखे। आहाहा! आदि। आहाहा! मकान के कारण इत्यादि-इत्यादि, मन्दिर का पैसा, ट्रस्ट का पैसा, मन्दिर के ट्रस्ट के उद्धार का यह सब ध्यान रखे। वह सब हमारा है, ऐसी बुद्धि करता है। आहाहा! वह श्रमणाभासी द्रव्यलिंगी है। आहाहा! अब यह तो इसमें कथन है और वह भी द्रव्यलिंगी उसके लिये भोजन (बनाया हुआ ले)। यहाँ तो यह लिया, भोजन के लिये द्रव्यलिंग ग्रहण किया। बाकी उसके लिये भोजन बनाकर ले तो वह भी द्रव्यलिंगी नहीं है। वहाँ द्रव्य में छह मूलगुण में पूरा अन्तर है। अष्टपाहुड़ में कहते हैं मूलगुण में अन्तर है, उसे सब पूरा अन्तर है। आहाहा! ऐसी बात! आचार्य तो कहते हैं, वह जगत को प्रत्यक्ष सत्य करते हैं। किसी की व्यक्ति का कुछ नहीं है। किसी व्यक्ति के आदर-अनादर की बात नहीं है। आहाहा! वस्तु का ऐसा स्वरूप है, वह वर्णन करते हैं। आहाहा!




श्लोक-२४०

[अब इस १४३वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज पाँच श्लोक कहते हैं:]

(मालिनी)

अभिनव-मिद-मुच्चैर्मोहनीयं मुनीनां,
त्रिभुवनभुवनान्तर्ध्वान्तपुञ्जायमानम् ।
तृणगृहमपि मुक्त्वा तीव्रवैराग्यभावाद्,
वसतिमनुपमां तामस्मदीयां स्मरन्ति ॥२४०॥

(वीरछन्द)

तीन लोकमय महा निलय में जो करता है वास सदा ।
महातिमिरवत् मुनि को कोई तीव्र मोह का उदय कदा ॥
पहले तीव्र विरक्त भाव से घास फूस का घर छोड़ा ।
फिर भी 'मेरा वह अनुपम घर' याद करें वे मुनि ऐसा ॥२४०॥

[श्लोकार्थ :] त्रिलोकरूपी मकान में रहे हुए (महा) तिमिरपुंज जैसा मुनियों का यह (कोई) नवीन तीव्र मोहनीय है कि (पहले) वे तीव्र वैराग्यभाव से घास के घर को भी छोड़कर (फिर) 'हमारा वह अनुपम घर!' ऐसा स्मरण करते हैं! ॥२४०॥

श्लोक -२४० पर प्रवचन

[अब इस १४३वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज पाँच श्लोक कहते हैं:] २४० (श्लोक)

अभिनव-मिद-मुच्चैर्मोहनीयं मुनीनां,
त्रिभुवनभुवनान्तर्ध्वान्तपुञ्जायमानम् ।
तृणगृहमपि मुक्त्वा तीव्रवैराग्यभावाद्,
वसतिमनुपमां तामस्मदीयां स्मरन्ति ॥२४०॥

श्लोकार्थ :... आहाहा ! त्रिलोकरूपी मकान में रहे हुए (महा) तिमिरपुंज जैसा मुनियों का यह (कोई) नवीन तीव्र मोहनीय है... आहाहा ! मुनि होकर यह क्या किया ? कहते हैं । उसे तो आत्मा के ध्यान में आनन्द में रहना चाहिए । आहाहा ! अतीन्द्रिय आनन्द में रहना । उसमें विकल्प आवे, उसे भी दुःखरूप देखे । उसमें रहना नहीं चाहे । बाहर में दुनिया के आचरण में कोई शुभभाव में रहना नहीं चाहे । आवे, परन्तु अतीन्द्रिय आनन्द में रहना चाहते हैं, मुनि तो उसे कहते हैं । आत्मा का जो अतीन्द्रिय आनन्द, उसमें लीन हों । आहाहा !

यह यहाँ कहते हैं त्रिलोकरूपी मकान में रहे हुए (महा) तिमिरपुंज जैसा मुनियों का यह (कोई) नवीन... अरे ! घर छोड़कर, मकान छोड़कर, कुटुम्ब छोड़कर, दुकान छोड़कर । यह सब नया-नया कहाँ से आया ? कहते हैं । आहाहा ! यह मोह का उदय नया तीव्र मोह कहाँ से आया ? आहाहा ! कि (पहले) वे तीव्र वैराग्यभाव से घास के घर को भी छोड़कर... आहाहा ! अर्थात् साधारण घर था, उसे भी छोड़कर 'हमारा वह अनुपम घर!' है । हम रहते हैं, वह हमारा मकान है, वह हमारा है । अरे ! यह तीव्र मोह नया कहाँ जागृत हुआ ? कहते हैं । आहाहा !

यह वस्तुस्थिति का वर्णन है, भाई ! किसी व्यक्ति के लिये कुछ नहीं है । काल बहुत हल्का हो गया, इसलिए ऊँची वस्तु, मुनिपना, भावलिंग रहा नहीं और द्रव्यलिंग में मुनिपना मनाकर, द्रव्यलिंग में भी उसके लिये चौका-आहार-पानी करके मनवाना है । पूरा काल बहुत बदल गया है । मुनिराज यह वर्णन करते हैं, वह मध्यस्थ से कहते हैं । आहाहा ! अरे ! घर छोड़कर और यह क्या दूसरे घर की लगायी ? स्त्री, पुत्र छोड़कर और दूसरे नये लड़के और... आहाहा ! शास्त्र में तो यहाँ तक आता है कि शिष्य को दीक्षा देनी हो, ऐसे शिष्य के प्रति मोह भी करे तो वह भी साधु नहीं है । आहाहा ! आता है न ? जिसे दीक्षा देनी है, उस पर राग करे और मोह करे, वह मुनि नहीं है । आहाहा ! लड़के के प्रति राग करे । आहाहा ! वह शिष्य के प्रति करे । बात तो सब एक की एक हुई । आहाहा ! श्लोक है, हों ! अरे ! यह नया मोह कहाँ से जागृत हुआ ? कहते हैं । घर छोड़ा, दुकान छोड़ी, व्यापार छोड़ा और यह मेरा घर, यह हमारा मकान, हमारा मन्दिर... आहाहा ! यह हमारा रहने का स्थान । यह नया मोहनीय कहाँ से जागृत हुआ ? ऐसा कहते हैं । आहाहा !

‘अनुपम घर!’ ऐसा स्मरण करते हैं! याद करते हैं, हों! भले वे बाहर में न जाए। अन्दर याद करे कि यह घर हमारा और यह अमुक और यह अमुक। वह भी परवश मुनि पराधीन है। आहाहा! मुनि तो परमेश्वरपद है। आहाहा! जिन्हें क्षण-क्षण में सातवाँ गुणस्थान, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। क्षण में विकल्प उठे, वह दुःख लगता है और क्षण में सातवें में अन्दर जाते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में लवलीन हो जाते हैं। आहाहा! बाहर निकलना रुचता नहीं, तथापि पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण बाहर विकल्प में आवे परन्तु दुःख लगता है। आहाहा! ऐसा मुनिपना होता है। जैनदर्शन का मुनिपना ऐसा होता है। अकेला नग्नपना (धारण किया), वस्त्र छोड़ दिये और बाहर में आहार लेने की क्रिया करे, इसलिए साधु है, ऐसा नहीं है, कहते हैं। आहाहा! कठिन बात है। श्वेताम्बर और स्थानकवासी को तो यहाँ गिना ही नहीं है। उन्हें तो साधु के व्यवहार में भी (नहीं रखा है) क्योंकि वे तो मिथ्यादृष्टि होकर अलग पड़े हैं। भगवान के पश्चात् दो हजार वर्ष में—अभी से दो हजार वर्ष में। भगवान के पश्चात् पाँच सौ वर्ष में। आहाहा! यहाँ तो दिगम्बर में रहे हुए मुनि घर छोड़कर फिर यह शिष्य की, मकान की, पैसे की ममता लगावे... आहाहा! यह तो नवीन प्रकार का मोह कहाँ से उगा? ऐसा कहते हैं। यह (कोई) नवीन तीव्र मोहनीय... आहाहा! पहले नहीं था और नया कहाँ से आया यह? घर छोड़ते समय तो वैराग्य था। उसमें यह फिर वापस कहाँ आया? यह २४० हुआ।

श्लोक-२४१

(शार्दूलविक्रीडित)

कोऽपि क्वापि मुनिर्बभूव सुकृती काले कलावप्यलं
मिथ्यात्वादिकलङ्कपङ्करहितः सद्गुणरक्षामणिः ।
सोऽयं सम्प्रति भूतले दिवि पुनर्देवैश्च सम्पूज्यते,
मुक्तानेक-परिग्रह-व्यतिकरः पापाटवी-पावकः ॥२४१॥

(वीरछन्द)

कोई कहीं भाग्यशाली जन मोह महामल रहित हुए।
सत्य धर्म की रक्षा को मुनि, मणि समान सामर्थ्य धरें ॥

परिग्रह का विस्तार तजा जो अघ कानन को अग्नि समान ।

भूतल में या देवलोक में ऐसे मुनि हैं पूज्य महान ॥२४१॥

[श्लोकार्थः] कलिकाल में भी कहीं कोई भाग्यशाली जीव मिथ्यात्वादिरूप मलकीचड़ से रहित और *सद्धर्मरक्षामणि ऐसा समर्थ मुनि होता है। जिसने अनेक परिग्रहों के विस्तार को छोड़ा है और जो पापरूपी अटवी को जलानेवाली अग्नि है, ऐसा यह मुनि इस काल भूतल में तथा देवलोक में देवों से भी भलीभाँति पुजता है ॥२४१॥

श्लोक -२४१ पर प्रवचन

२४१ (श्लोक)

कोऽपि क्वापि मुनिर्बभूव सुकृती काले कलावप्यलं

मिथ्यात्वादिकलङ्कपङ्करहितः सद्धर्मरक्षामणिः ।

सोऽयं सम्प्रति भूतले दिवि पुनर्देवैश्च सम्पूज्यते,

मुक्तानेक-परिग्रह-व्यतिकरः पापाटवी-पावकः ॥२४१॥

श्लोकार्थः ... आहाहा ! कलिकाल में भी... ऐसे पंचम कलिकाल में भी कहीं कोई भाग्यशाली जीव मिथ्यात्वादिरूप मलकीचड़ से रहित... होकर । आहाहा ! मिथ्यात्व की भ्रमणा । मिथ्यात्व के असंख्य प्रकार हैं । उसके असंख्य प्रकार के मिथ्यात्व से छूटकर... आहाहा ! और सद्धर्मरक्षामणि ऐसा समर्थ मुनि होता है । कलिकाल में भी होता है । आहाहा ! पद्मनन्दिपंचविंशति में तो ऐसा कहा है, दो-तीन होते हैं । इस काल में दो-तीन धर्मी जीव होते हैं, ऐसा लिखा है । पद्मनन्दिपंचविंशति । दो-तीन अर्थात् कम । संख्या भले (लिखी) । मोक्षमार्गप्रकाशक में स्पष्टीकरण किया है । दो-तीन अर्थात् थोड़े, ऐसा । ज्ञानार्णव में भी ऐसा कहा है, उसका अर्थ थोड़ा । आहाहा !

यहाँ कलिकाल में भी... ऐसा काल वर्तता है, तो भी । कहीं कोई भाग्यशाली

* सद्धर्मरक्षामणि=सद्धर्म की रक्षा करनेवाला मणि । (रक्षामणि=आपत्तियों से अथवा पिशाच आदि से अपने को बचाने के लिए पहिना जानेवाला मणि ।)

जीव... आहाहा! मिथ्यात्वादि... अत्रतादि, प्रमादादि छोड़कर। मिथ्यात्वादि... है न सब? मिथ्यात्व, अत्रत, प्रमाद आदि। अरे! पाँच में से पाँचों का अंश छूटता है। मिथ्यात्व सर्वथा छूटता है। अत्रत का अंश, प्रमाद का अंश, कषाय का अंश और योग का अंश, वह अंश भी चौथे (गुणस्थान में) छूट जाता है। आहाहा! मिथ्यात्वादिरूप मलकीचड़ से रहित... ऐसे भी मुनि होते हैं। इस काल में भी ऐसे मुनि होते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : कहीं और कोई।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं कोई है। मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है कि अभी हंस कहे हैं परन्तु हंस न दिखायी दे तो कहीं कौवे को हंस कहा जाएगा? कौवे को हंस माना जाएगा? उसमें लिखा है। अभी है, परन्तु दिखते नहीं। हंस दिखते नहीं, इसलिए कहीं कौवे को हंस माना जाएगा। आहाहा! मोक्षमार्गप्रकाशक में है। टोडरमलजी!

यहाँ कहते हैं मिथ्यात्व, अत्रत, प्रमाद, कषाय आदिरूप महाकादव। महाकादव। आहाहा! उससे रहित और सद्धर्मरक्षामणि... नीचे अर्थ है। सद्धर्म की रक्षा करनेवाला मणि। (रक्षामणि=आपत्तियों से अथवा पिशाच आदि से अपने को बचाने के लिये पहिना जानेवाला मणि।) यह सद्धर्ममणि। अपने धर्म की रक्षा करनेवाली मणि। आहाहा! यहाँ तो स्व आश्रय... स्व आश्रय, एक बात। यह बात करने पर सूक्ष्म पड़ती है परन्तु बात दूसरी है नहीं। पर का आश्रय, तीन लोक के नाथ का आश्रय लेने जाएगा तो भी राग होगा। धर्म नहीं (होगा) और वह धर्म नहीं परन्तु वह राग, इसलिए फिर... यह कठिन पड़ता है कि तुम उसे-राग को अधर्म कहते हो? ऐसा कहते हैं। परन्तु वह तो धर्म नहीं, वह अधर्म है। दूसरा क्या? आहाहा! फिर शुभभाव आयेगा, वह शुभभाव भी राग है। राग, वह अधर्म है। आहाहा! धर्म नहीं। धर्म से विरुद्ध, वह अधर्म है। आहाहा! कठिन पड़ता है।

सम्प्रदाय में (संवत्) १९८५ के वर्ष में कहा था। १९८५। १५ और ३६=५१ वर्ष पहले। हजारों लोग थे। बोटद में तो बड़ी सभा भर गयी थी। तीन सौ घर और लोग बहुत भरते थे, लोग समाते नहीं। तब कहा था कि भाई! देखो! जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधता है, वह भाव धर्म नहीं है। धर्म नहीं है अर्थात् दूसरी भाषा से कहें तो अधर्म है। आहाहा! सम्प्रदाय में कहा था।

मुमुक्षु : तब किसी ने विरोध नहीं किया?

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई सामने नहीं देखता। एक साधु था, हमारा गुरुभाई वह अन्दर जरा वोसरे.. वोसरे.. करे। धीरे-धीरे वोसरे.. वोसरे... वोसरे.. (बोले)। ऐसी श्रद्धा नहीं। दो बार की। १९८५ के पौष महीने की बात है। पंच महाव्रत के परिणाम, वह आस्रव और दुःख है।

मुमुक्षु : आस्रव, वह संवर नहीं। आस्रव में दुःख है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख है। और तीर्थकरगोत्र जिस भाव से बँधे, वह आस्रव और दुःख है। सब समझते थे। तब तो बहुत मान था न! सम्प्रदाय में बहुत मान था। वह चाहे जो कहते होंगे, इनकी बात तो सत्य ही है। इनका कोई विरोध करे नहीं। एक गुरुभाई बैठे थे। यह सुनते थे। वे जरा (बोले) वोसरे... वोसरे... ऐसी श्रद्धा (नहीं)। कौन सुने। मैंने कहा, सुनना किसी ने? न बोले होते तो क्या दिक्कत थी? किसी ने सुना नहीं तुमने यह क्या कहा? ऐसा कि ऐसी श्रद्धा नहीं चाहिए, ऐसी श्रद्धा नहीं चाहिए। जो शुभभाव पंच महाव्रत भी दुःखरूप है, यह श्रद्धा नहीं चाहिए। आहाहा! जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधे, वह राग। धर्म से बँधे? तब अधर्म से बँधता है। आहाहा! सम्प्रदाय में स्पष्ट बात की थी। १९८५ के वर्ष में। ५१ वर्ष पहले। कुछ खलबलाहट नहीं हुई थी। वह एक बोला परन्तु उसे कोई सुनते नहीं। फिर सब उठ गये, फिर मैंने उससे कहा - परन्तु तुम्हें नहीं जँचता तो बोलना किसलिए था? किसने माना? कहा, तुम क्या बोले, यह किसी को - सभा को खबर है?

बात यह, पंच महाव्रत के परिणाम दुःख? और तीर्थकरगोत्र बाँधे, वह भाव दुःख? परन्तु राग है न? राग है, वह दुःख है या सुख है? आहाहा! मन्दराग आयेगा, अभी कहेंगे। १४४ में। आहाहा! धर्म नहीं। मन्दराग भी धर्म नहीं अर्थात् अधर्म है। सीधी भाषा से कहा, कठिन कहें तो अधर्म है। ऐसा कहे तो वह शुभराग है। आहाहा! खलबलाहट... खलबलाहट हो गयी। आहाहा! विकल्प है न? शुभभाव, वह विकल्प है। विकल्प है, वह कषाय है। कषाय है, वह कष अर्थात् संसार का लाभ है। उसमें संसार-भव का लाभ है। उसमें आत्मा का लाभ नहीं। आहाहा! जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बाँधे, उस भाव से भी आत्मा को लाभ नहीं, क्योंकि उस भाव से प्रकृति बाँधेगी। (जब) उस भाव का नाश करेगा, तब उस प्रकृति का उदय आयेगा। क्या कहा?

जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बाँधा था, उस भाव का नाश होगा, तब उस प्रकृति का उदय आयेगा। प्रकृति जड़ बँधेगी। शुभभाव है, इसलिए तीर्थकरगोत्र की जड़ प्रकृति बँधेगी। समकिति है न! परन्तु उस प्रकृति का उदय कब आयेगा?—कि यह जो भाव-शुभराग किया था, इसका नाश करके वीतराग होगा, तब उसका तेरहवें गुणस्थान में उदय आयेगा। उसमें तुझे लाभ क्या हुआ? शुभराग से क्या लाभ हुआ? समझ में आया इसमें? तीर्थकरगोत्र प्रकृति का उदय तेरहवें में ही आता है। चौथे-पाँचवें में तीर्थकरगोत्र की प्रकृति का उदय नहीं होता। आहाहा! तीर्थकरगोत्र का बन्धन चौथे, पाँचवें, छठवें गुणस्थान में होता है परन्तु उसका उदय नहीं होता। वह प्रकृति बँधती है, वह जहर के वृक्ष में है। समयसार में १४८ प्रकृति को जहर का वृक्ष कहा है। १४८ प्रकृति को जहर का-विष का वृक्ष कहा है। वह प्रकृति जहर का वृक्ष है। प्रकृति संयोग देगी। वह भी केवल (ज्ञान) होने के बाद समवसरण देगी। उसमें आत्मा को क्या हुआ? आहाहा! समझ में आया पण्डितजी? आहाहा! मार्ग तो यह है, भाई! यहाँ तो अभी... आहाहा!

कलिकाल में भी कहीं कोई... कहीं और कोई। आहाहा! भाग्यशाली जीव मिथ्यात्वादि... अव्रत, प्रमाद, कषाय आदि मलकीचड़ से रहित और सद्धर्मरक्षामणि ऐसा समर्थ मुनि होता है। अपने आत्मा के आनन्द के ज्ञान को, आत्मा के स्वभाव की रक्षा करनेवाला ऐसा वह सद्धर्मरक्षामणि होता है। अपना अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय शान्ति, उसे रखने के लिये मणिरत्न समान वह मुनि है। आहाहा! यह मणि बाँधते हैं न? पिशाच को, यह नीचे लिखा है न? (रक्षामणि=आपत्तियों से अथवा पिशाच आदि से अपने को बचाने के लिए पहिना जानेवाला मणि।) आता है। यह तो सद्धर्म आत्मा है कि अपनी रक्षा स्वयं करता है। आहाहा! शुद्धोपयोग। शुभ और अशुभरहित शुद्धोपयोग अपनी रक्षा करता है। वह सद्धर्ममणिरत्न है। आहाहा!

ऐसी-ऐसी ऊँची बातें, लोगों ने फिर सुनी न हो, इसलिए ऐसा लगता है। ऐई! एकान्त है। बापू! वस्तु तो एकान्त ही है। निश्चयनय कहा जाता है, जो नय वह सम्यक् एकान्त है। आहाहा! दूसरी चीज़ है। व्यवहारनय नहीं? व्यवहारनय का विषय नहीं? उसका फल नहीं? सब है। व्यवहारनय है, व्यवहारनय का विषय है। नय तो विषयी है, तो उसका विषय है (परन्तु) आदरणीय नहीं है। आहाहा! अब ऐसी बातें। दो नय का

उपदेश है। वीतराग का दो नयों का उपदेश है। दो नय का उपदेश है। इसमें भी आता है न? पहले शुरुआत में। पंचास्तिकाय में आता है और इसमें भी आता है।

देखो! दो नयों के आश्रय से सर्वस्व कहने की जिसकी पद्धति है... यह दूसरा बोल (श्लोक) है, पृष्ठ दूसरा है। दूसरा पृष्ठ। उसकी पाँचवीं लाईन। दो नयों के आश्रय से... है? दो नयों के आश्रय से सर्वस्व... सर्वस्व, सब जगह कहने की पद्धति है। वस्तु है न! वह आदरणीय नहीं। व्यवहारनय नहीं? व्यवहारनय का विषय नहीं? राग नहीं? आहाहा! है; इसलिए आदरणीय है—ऐसा नहीं। वह ज्ञान कराने के लिये है। आहाहा! दो नय का उपदेश है, ऐसा यहाँ कहा। एक नय का ही उपदेश है, ऐसा नहीं। आदरणीय (नहीं) क्योंकि दोनों जब पड़े, तब एक आदरणीय है और एक आदरणीय नहीं, नहीं तो दो पड़े कैसे? यदि दोनों आदरणीय समान हों तो दो पड़े किसलिए? आहाहा! समझ में आया? न्याय से समझे तो भाई! समझ में आये, बापू! यह तो ऐसी बात है। यह कहीं कोई बलजोरी से हठ से मना देना और मानना, ऐसी कोई यह चीज़ नहीं है। यह तो अन्दर की चीज़ है। आहाहा!

व्यवहारनय का विषय है। तीर्थकरपना बँधता है, वह व्यवहारनय का विषय है। आहाहा! आदरणीय नहीं है। यह बड़ा प्रश्न हुआ था। बोटाद में मूलचन्दजी साधु थे। वहाँ एक गृहस्थ थे 'गोपाणी'। है न वहाँ? अहमदाबाद में मन्दिर। उसके पास दुकान है। भूरा, भूरा गोपाणी। वह एक प्रश्न उनके पास लाये थे कि यह जो तीर्थकरगोत्र बँधता है और यह सब शुभभाव होता है तो वह भी आदरणीय है या नहीं? कहा, नहीं। वह तो सम्प्रदाय में गढडा में चातुर्मास था तब। गढडा, १९८१ की बात है। (संवत्) १९८१ का वर्ष, गढडा में चातुर्मास था न, इसलिए ऐसे जाते थे। उसमें बीच में बोटाद नहीं गये थे। वहाँ मूलचन्दजी एक थे। फिर एक गाँव है, गाँव का नाम क्या? भूल गये। वहाँ उतरे थे। वहाँ उनने ऐसा एक प्रश्न किया था कि... 'उत्तराध्ययन' २९वें बोल में आता है। २९वें अध्याय में। वैयावृत्य... कैसे बतलाया? वैयावृत्य तीर्थकरगोत्र बाँधे। आहार, वैयावृत्य से तीर्थकरगोत्र बाँधे, वह आदरणीय नहीं? कहा, नहीं। तब १९८१ की बात है। उस साधु की ओर से बात लाये थे। गोपाणी। अभी खाडिया में। ...यह खाडिया है न अहमदाबाद। खाडिया के मन्दिर के पास उसकी दुकान है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **सद्धर्मरक्षामणि ऐसा समर्थ मुनि होता है**। पंचम काल में मुनि नहीं, ऐसा नहीं। परन्तु मुनि हैं। हंस है, इसलिए हंस न दिखे तो कहीं कौवे को हंस माना जाएगा? इसी प्रकार मुनि हैं, परन्तु मुनि के लक्षण न दिखे तो कहीं मुनि माना जाएगा? समझ में आया? मोक्षमार्गप्रकाशक में है। आहाहा! अभी मुनि नहीं दिखते। मुनि कहे हैं। हंस नहीं दिखते, वह कहीं कौवे को हंस माना जाएगा? ऐसा लिखा है। अरे! प्रभु! बहुत कठिन काम। सरलता होकर कषाय को मन्द करके मान छोड़ देना चाहिए। आहाहा! चाहे जैसी सत्य बात आवे छोटी, परन्तु भूल होवे तो उसे छोड़ देना चाहिए। बापू! मान में कब तक रहेगा? मान में मर जाएगा। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि समर्थ मुनि है। जिसने अनेक परिग्रहों के विस्तार को छोड़ा है... आहाहा! वस्त्र का टुकड़ा भी मुनि तो रखते नहीं। आहाहा! शिष्य को मेरा शिष्य है, इसरूप भी नहीं मानते। परचीज़ है, उसे अपनी कहाँ माने? आहाहा! ऐसी बात है। **परिग्रहों के विस्तार को...** अनेक परिग्रहों का विस्तार। आहाहा! मकान, इज्जत, कीर्ति, शिष्य-शिष्या उसे माननेवाले, लाखों लोग माननेवाले हों, इसलिए मैं बड़ा हूँ। यह सब छोड़ दे, भाई! आहाहा! यह मान काम नहीं आयेगा। आत्मा का आश्रय, निर्मानता, यह काम आयेगी। आहाहा! ऐसी बात है।

और जो पापरूपी अटवी को जलानेवाली अग्नि है... मुनि। पाप अर्थात् पुण्य और पाप दोनों। **पापरूपी अटवी को जलानेवाली अग्नि है...** आहाहा! उसे रखनेवाला तो नहीं, रचनेवाला नहीं। आहाहा! रचता है अवश्य, परन्तु रचूँ, रखूँ – ऐसा नहीं है। उसे तो नाश करनेवाली अग्नि समान है। आहाहा! शुभ और अशुभभाव को जला डालने को अग्नि-समान है। उससे लाभ माननेवाला मुनि नहीं है। लाभ माननेवाला मुनि होवे तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! शुभ या अशुभभाव दोनों। आहाहा! **ऐसा यह मुनि इस काल भूतल में...** वर्तमान में ही। **तथा देवलोक में देवों से भी भलीभाँति पुजता है**। आहाहा! ऐसा मुनिपना जो हो, वह तो इस लोक में भी पुजता है और देवलोक में देव भी पूजते हैं। आहाहा! २४१ कहा।

श्लोक-२४२

(शिखरिणी)

तपस्या लोकेऽस्मिन्निखिलसुधियां प्राणदयिता ,
 नमस्या सा योग्या शतमखशतस्यापि सततम् ।
 परिप्राप्यैतां यः स्मर-तिमिर-संसार-जनितं,
 सुखं रेमे कश्चिद्दूत कलिहतोऽसौ जडमतिः ॥२४२॥

(वीरछन्द)

है सुबुद्धि जन को इस जग में प्राणप्रिया यह तपचर्या ।
 इन्द्रों को भी वन्द्य निरन्तर है सुयोग्य यह तपचर्या ॥
 तप कर भी यदि सांसारिक कामान्धकारमय सुख चाहे ।
 तो वह जड़मति अरे अरे रे! कलि के द्वारा घायल है ॥२४२॥

[श्लोकार्थः] इस लोक में तपश्चर्या समस्त सुबुद्धियों को प्राणप्यारी है; वह योग तपश्चर्या सो इन्द्रों को भी सतत वन्दनीय है। उसे प्राप्त करके जो कोई जीव कामान्धकारयुक्त संसारजनित सुख में रमता है, वह जड़मति अरे रे! कलि से हना हुआ है (-कलिकाल से घायल हुआ है) ॥२४२॥

श्लोक -२४२ पर प्रवचन

२४२ (श्लोक)

तपस्या लोकेऽस्मिन्निखिलसुधियां प्राणदयिता ,
 नमस्या सा योग्या शतमखशतस्यापि सततम् ।
 परिप्राप्यैतां यः स्मर-तिमिर-संसार-जनितं,
 सुखं रेमे कश्चिद्दूत कलिहतोऽसौ जडमतिः ॥२४२॥

श्लोकार्थः इस लोक में तपश्चर्या समस्त सुबुद्धियों को प्राणप्यारी है;... तपस्या अर्थात् आनन्दस्वरूप। आहाहा! 'तपयन्ते इति तपः' आनन्द का सागर तप से तपकर सोने

में जैसे गेरुं लगे और शोभे। सोने में जैसे गेरुं लगे और ओपे तथा शोभे; उसी प्रकार आत्मा अन्दर आनन्द से शोभ उठे। अतीन्द्रिय आनन्द से जलहला उठे, उसे तपस्या कहते हैं। आहाहा! है? इस लोक में तपश्चर्या समस्त सुबुद्धियों को प्राणघ्यारी है;... परन्तु यह तपस्या। यह अपवास किये और यह किया और सम्यग्दर्शन बिना... आहाहा! बहुत कठिन काम। सम्यग्दर्शन बिना शास्त्र पढ़ा, ग्यारह अंग पढ़ा, उसका मान लिया, वह कोई वस्तु नहीं। आहाहा!

इस लोक में... तपश्चर्या शब्द से मुनिपना। मुनि शब्द से (आशय) भावलिङ्गी। भाव मुनिपना। भगवान का दीक्षा महोत्सव कहा जाता है न? दीक्षा महोत्सव अर्थात् तप का। तप महोत्सव कहो या दीक्षा महोत्सव कहो। दीक्षा को तप कहा जाता है, चारित्र को तप कहा जाता है। चारित्र अन्दर में रमणता की उग्रता को तप कहा जाता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो हो, तदुपरान्त चारित्र में पुरुषार्थ की उग्रता, उसे तपस्या कहा जाता है। शब्द-शब्द में अन्तर है। आहाहा! वापस इसमें मान ले। तपस्या में लीन यह अपवास-बपवास करे, वहाँ लीन हो जाए। उसकी बात यहाँ नहीं है। यहाँ तो तपयन्ते इति तपः। अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ अन्तर की पर्याय में जागती ज्योत जगे और आनन्द की लहर में उठे और उससे शोभित हो, उसे तपस्या कहा जाता है। आहाहा! कहो, ऐसी तपस्या कभी सुनी थी?

मुमुक्षु : सुनानेवाला कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ भी भाषण करते थे। भाषण देते थे। भाषण सुनते थे। विपरीत श्रद्धा का अन्दर आता था। आहाहा! स्थानकवासी में पत्र निकलता है न? पहले तो भाई की ओर से निकलता था। वाडीलाल मोतीलाल, अहमदाबाद। वह मैं दुकान पर मँगाता था। (संवत्) १९६५ के वर्ष। १९६५ के वर्ष से वाडीलाल मोतीलाल का जैन समाचार का पत्र था। वह निकलता। क्या कहा?

मुमुक्षु : अब जैन... नाम है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं। परन्तु वह दिगम्बर जैन समाचार। खबर है। घर में आता था। आहाहा! और भेंटरूप से कबीर की पुस्तक आयी थी। कबीर की बनायी हुई।

वह मूर्ति मानते नहीं न। वह कबीर मूर्ति को नहीं मानते। पत्थर पूजे हरि पूजे मोटा पूजे पहाड़, कबीर ऐसा कहे। 'पत्थर पूजे हरि मिले, तो मोटा मैं पूजूँ पहाड़।' ऐसा आता था। वह पुस्तक भेंट में आती थी। तब की बात है।

मूर्ति है, मूर्ति पूजा है, अनादि की है। शाश्वत् आठवें द्वीप में-नन्दीश्वरद्वीप में मूर्ति शाश्वत् है, बावन जिनालय है, एक-एक में एक सौ आठ प्रतिमाएँ हैं। इन्द्र एकावतारी जाकर पूजते हैं परन्तु समझते हैं कि यह शुभभाव है। मूर्ति निकाल डाले (निषेध करे) वह दृष्टि विपरीत है। आहाहा! तथा मूर्ति में धर्म माने, वह मिथ्यात्व है। धर्म नहीं है परन्तु शुभभाव आता है, तब मूर्ति आदि की पूजा होती है। होती है। भाव शुभभाव आता है। आहाहा! परन्तु उसे धर्म के कारणरूप से स्वीकार नहीं करता। धर्मरूप से तो नहीं परन्तु धर्म के कारणरूप से भी नहीं। आहाहा! तथापि मूर्ति और पूजा नहीं है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! अनादि से शाश्वत प्रतिमाएँ हैं। इन्द्र एकावतारी पूजते हैं। आहाहा! जिनालय है। अष्टम नन्दीश्वर द्वीप में आठ-आठ दिन कार्तिक शुक्ल अष्टमी से पूर्णिमा (इसी तरह आषाढ़ और फाल्गुन माह में भी) इन्द्र वहाँ जाते हैं। मनुष्य तो जा नहीं सकते। ढाई द्वीप के बाहर मनुष्य नहीं जा सकते। देव पूजा करते हैं और महाभक्ति करते हैं। धूमधाम चलती है। समझे! घुंघरू पहनकर नाचते हैं, समझते हैं कि यह क्रिया जड़ की है। अन्दर मेरा भाव है, उतना शुभभाव राग है, परन्तु वह बन्धन का कारण है। मैं उससे भिन्न हूँ। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं। आहाहा!

इस लोक में तपश्चर्या समस्त सुबुद्धियों को... वह तपश्चर्या अर्थात् यह। वह योग तपश्चर्या सौ इन्द्रों को भी सतत वन्दनीय है। ऐसी तपस्या तो इन्द्रों को भी वन्दनीय है। उसे प्राप्त करके जो कोई जीव कामान्धकारयुक्त संसारजनित सुख में रमता है,... ऐसी दशा पाकर और विषय में कामान्धकार होकर रमता है। वह जड़मति अरे रे! कलि से हना हुआ है (-कलिकाल से घायल हुआ है)। आहाहा! विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)